ग्रामीण रोजगार योजनाएं एवं आर्थिक सामाजिक विकास

अर्चना सिंह*

भारत गांवो का देश है। तीव्र गति से हो रहे औद्योगीकरण, नगरीकरण तथा प्रवजन के बाद भी भारत की 76 प्रतिशत जनसंख्या गांव में निवास करती है। अतः यदि देश को विकास के पथ पर आगे बढ़ना है, तो ग्रामीण अंचल का विकास उसकी आवश्यक शर्त है। 'विकास से अभिप्राय सामाजिक परिवर्तन के साथ–साथ आर्थिक वृद्धि से भी है (एन0 प्रसाद, पृ0सं0–85)।

भारत में ग्रामीण विकास के इतिहास को उन्नीसवीं शताब्दी से जोड़ा जा सकता है। 1866 में रशेल मेटकॉफ (Rachel Metcalf) नामक एक अंग्रेज महिला ने भारत में 'क्वेकर सर्विस' (Quaker Service) का आरम्भ किया, जिसका लक्ष्य मानव जाति को निःस्वार्थ सेवा करना था। हिलिडा कैशमोर (Hilida Cashmore) ने 1932 में क्वेकर आश्रम की स्थापना की। यह आश्रम ग्रामीण लोगों को विविध सेवाएं प्रदान करता था।

ग्रामीण विकास वह कार्यक्रम है जिसके अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों के निम्न आय वर्ग के लोगों के सामाजिक आर्थिक स्तर को क्षेत्रीय संसाधनों के अनुकूलतम उपयोग द्वारा उन्नत बनाया जाय। स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त भारत को विरासत में अनेक सामाजिक आर्थिक समस्याएं मिली। आर्थिक दृष्टि से कमजोर भारत के विकास हेतु ग्रामीण भारत का आर्थिक उन्नयन आवश्यक था। विकीपीडिया के अनुसार 'देशों, क्षेत्रों या व्यक्तियों की आर्थिक समृद्धि के वृद्धि को आर्थिक विकास कहते है' नीति निर्माण की दृष्टि से आर्थिक विकास उन सभी प्रयत्नों को कहते है, जिनका लक्ष्य किसी जन–समुदाय की आर्थिक स्थिति और जीवन स्तर के सुधार के लिए अपनाए जाते हैं। वस्तुतः विकास मानवीय प्रयत्न का परिणाम है तथा आर्थिक विकास एक प्रक्रिया है जिससे कि राष्ट्रीय आय में निरन्तर वृद्धि होती रहती है। आर्थिक तथा सामाजिक विकास परस्पर सम्बद्ध है। एक दृष्टिकोंण यह है कि आर्थिक विकास के बिना सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन सम्भव नहीं है, जबकि दूसरा दृष्टिकोण यह है कि समाज के भीतर संस्थाओं में होने वाले परिवर्तन आर्थिक विकास को सम्भव बनाते है (राम आहुजा, पृ0सं0–167)।

विकासशील देशों की विकास समस्याओं पर कार्य कर रहे विद्धान तथा संयुक्त राष्ट्रसंघ जैसी एजेन्सियों ने यह माना है कि आर्थिक विकास के अलावा सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक पक्ष भी होते है। विकासशील देशों के पर्याप्त रूप से आधुनिकीकृत न होने के कारण इनके विकास मार्ग में बहुत सी बाधाएं हैं। अतः इन देशों के सामाजिक विकास के लिए नीतियों और योजनाओं की जरूरत है। सामाजिक विकास नियोजन अब सिर्फ सामाजिक सेवाओं हेतु नियोजन से ही नहीं जुड़ा है बल्कि यह आर्थिक संवृद्धि हेतु नियोजन से अधिक सम्बद्ध है (शिव बहाल सिंह, पृ0सं0–22)।

सामाजिक विकास की अवधारणा मानवीय आवश्यकताओं की संतुष्टि तथा जीवन की गुणवत्ता के सुधार के प्रश्नों पर केन्द्रित है। सामाजिक विकास का सम्प्रत्यय बहुत व्यापक है। इसका उद्देश्य कुछ व्यापक सामाजिक लक्ष्यों तथा आदर्शों को प्राप्त करना है। इस नए लक्ष्य की अपेक्षाएं हैः–

1. व्यक्ति की अपेक्षा बड़े समुदायों जिसमें बहुसंख्यक गरीब भी सम्मिलित है, पर बल देने की दिशा में बदलाव।
2. मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति और जीवन की गुणवत्ता में सुधार के आधार पर लक्ष्यों को पुनः परिभाषित करना।
3. आर्थिक और सांस्कृतिक लक्ष्यों के पारस्पारिक सम्बन्धों को ध्यान में रखकर नियोजन और कार्यान्वयन की शैलियों में परिवर्तन।
4. नये सामाजिक लक्ष्यों को पाने के लिए पुनः वितरण की संस्थागत संरचना का निर्माण और संगठनात्मक और मूल्य सम्बन्धी परिवर्तनों को लाने के लिए व्यापक युक्तियां विकसित करना, जिससे पुनः परिभाषित सामाजिक लक्ष्य शीघ्रता से पाए जा सकें।

* वरिष्ठ प्रवक्ता–समाजशास्त्र, श्यामेश्वर महाविद्यालय, सिकरीगंज, गोरखपुर

5. सामाजिक प्रगति के मूल्यांकन और जन्म ले रही नयी प्रवृतियों को आंकने के लिए सूचकों का निर्माण।
6. यह देखने के लिए कि वृद्धि का स्तर बनाये रखने योग्य है तथा बाह्य सीमाओं के बाहर तो नहीं है, की निगरानी की व्यवस्था को बनाना।
7. वृद्धि से जुड़ी तथा अन्य समस्याओं का पूर्वानुमान और उनकी तत्काल और सक्षम ढंग से हल करने की तत्परता।
8. वर्तमान सामाजिक संरचनाओं की उपयुक्तता तथा औचित्य के बारे में प्रश्न और पुर्नविचार सम्भव बनाने के लिए और उसकी पुनः रचना की दशा में काम करने के लिए सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश का निर्माण।

इन उभरते हुए सम्प्रत्यय के तीन प्रमुख पक्ष है। प्रतिमानात्मक, मूल्यांकनात्मक तथा क्रियात्मक। यद्यपि यह तीनों जुड़े हुए है एवं हर एक की अपनी जटिलताएं है। सामाजिक विकास के लक्ष्यों को पाने के लिए इन सब पर एक साथ ध्यान देना आवश्यक है (एस0सी0 दूबे, पृ0सं0–83)।

जनसंख्या की दृष्टि से भारत का विश्व में दूसरा स्थान है। अतः भारत में मानव संसाधन या श्रम शक्ति का अभाव नहीं है। युवा शक्ति की दृष्टि से भारत का विश्व में प्रथम स्थान है, किन्तु इस अपार क्षमता, ऊर्जा और शक्ति से युक्त वर्ग (युवा), जिसकी सर्वाधिक संख्या ग्रामों में निवास करती है। बेरोजगारी की गम्भीर सामाजिक–आर्थिक समस्या से जुझ रहा है। ग्रामीण भारत के सामाजिक आर्थिक विकास के लिए भारत सरकार द्वारा समय–समय पर अनेक योजनाएं चलायी गई है। ग्रामीण क्षेत्रों में व्याप्त मानव संसाधन के समुचित तथा नियोजित उपयोग से ग्रामीण भारत के सामाजिक–आर्थिक विकास का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है और इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु सरकार द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों की बेरोजगारी दूर करने के उद्देश्य से चलाई गई योजनाओं का उल्लेख यहां आवश्यक हो जाता है। इनमें से कुछ प्रमुख योजनाएं निम्नलिखित है :– 1. महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम 2. जवाहर रोजगार योजना 3. राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम 4. ग्रामीण भूमिहीन रोजगार प्रत्याभूत कार्यक्रम 5. सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना 6. स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना 7. रोजगार आश्वासन योजना 8.काम के बदले अनाज योजना 9. ग्रामीण जनशक्ति कार्यक्रम 10. सघन ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम आदि।

महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम 2 फरवरी 2006 में आया इसके दो प्रमुख उद्देश्य थे यथा दिहाड़ी रोजगार की वृद्धि तथा प्राकृतिक संसाधनों को पुष्ट एवं उनका उचित प्रबन्धन करना इस उद्देश्य से ग्रामीण क्षेत्रों में अकुशल श्रमिकों को ''जाब कार्ड'' प्रदान किया जाता है जो उन्हें वर्ष में 100 दिन के रोजगार की गारंटी प्रदान करता है। ग्रामीण पुनर्निमाण हेतु यह विश्व में सबसे बड़ी योजना है। यह योजना भारत के 604 जिलों में तीन चरणों में आरम्भ की गई और इसके द्वारा 4.47 करोड से भी ज्यादा परिवार को रोजगार के अवसर प्रदान किए गए। यह योजना अकुशल श्रमिकों तक सीमित है तथा सतत् विकास के अन्तरिम लक्ष्य को लेकर कार्यरत है। किन्तु भ्रष्टाचार और उचित प्रबन्धन के अभाव में यह योजना असफल सिद्ध हो रही है। वित्तीय वर्ष 2011–12 में मात्र 3.08 प्रतिशत लोगों को ही मनरेगा में 100 दिन का रोजगार प्राप्त हो सका है। सरकार ने इस योजना का खर्च इस वर्ष 7,000 करोड़ रूपये घटा दिया है (इंडिया टूडे पृ0सं0–22)। जो यह दर्शाता है कि यह अधिनियम भारत की बेरोजगारी तथा गरीबी की समस्या को दूर करने के अपने उद्देश्य में वांछित सफलता प्राप्त करने में सफल नहीं हो पा रहा है।

वित वर्ष 2011–12 में 100 दिन का रोजगार पाने वाले परिवार

जिला	जाब कार्डस	100 दिन का काम	फीसदी
सहरसा, बिहार	2,96,811	69	0.02 %
नारायणपुर, छत्तीसगढ़	21,818	537	2.46 %
रेवाड़ी, हरियाणा	29,522	84	0.28 %
श्री गंगानगर, राजस्थान	3,68,062	1,007	0.27 %

खूंटी, झारखण्ड	1,07,932	703	0.65 %
दतिया, मध्य प्रदेश	87,849	263	0.29 %
पठानकोट, पंजाब	15,867	11	0.04 %
गौतमबुद्ध नगर, उ0प्र0	27,204	1	0.003 %
रूद्र प्रयाग, उत्तराखण्ड	43,599	124	0.28 %
भारत	12,25,83,546	37,76,421	3.08 %

(स्रोत– इंडिया टूडे, पृ0सं0–25, 2012)

जवाहर रोजगार योजना की घोषणा अप्रैल, 1989 में की गई थी। इस योजना के अन्तर्गत प्रत्येक परिवार के कम से कम एक सदस्य को उसके निवास स्थान के निकट प्रति वर्ष 50 से 100 दिन के लिए रोजगार उपलब्ध कराए जाने का लक्ष्य रखा गया। इस योजना के तहत कम से कम 30 प्रतिशत कार्य महिलाओं के लिए सुरक्षित किए गए। दो ग्रामीण मजदूरी रोजगार कार्यक्रम (आर0पी0 और आर0एल0ई0जी0पी0) इसी योजना में मिला दिए गए। ग्राम पंचायतों के माध्यम से यह योजना क्रियान्वित की जाती है। केन्द्र सरकार के अनुसार इस योजना द्वारा रोजगार के 3121.23 मिलियन मानव दिवस सृजित किए गए थे। यह कार्य दिवस जवाहर रोजगार योजना के अन्तर्गत 13,248 करोड की योजना राशि पर 1992–93 और 1995–96 के बीच विभिन्न राज्यों में सृजित किए गए। इस योजना के अन्तर्गत जनसंख्या के 46 प्रतिशत लोग आते है (राम आहूजा, पृ0सं0–315)।

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम अतिरिक्त खाद्यान्न की सहायता से ग्रामीण क्षेत्रों में अतिरिक्त रोजगार अवसर पैदा करने के लिए नियोजित किया गया था। प्रारम्भ में इस कार्यक्रम को भोजन के लिए कार्य योजना (FWP) कहा गया था। यह योजना 1 अप्रैल 1977 से प्रभावी हुई। इस योजना के द्वारा लाखों टन खाद्यान्न के उपभोग के द्वारा प्रतिवर्ष लाखों रोजगार के मानव दिवस बनाए गए।

इसी क्रम में ग्रामीण भूमिहीन रोजगार प्रत्याभूत कार्यक्रम आरम्भ किया गया, जिसका उद्देश्य सार्वजनिक कार्यों में लगे गरीबों को 3 रूपए प्रतिदिन की दर पर पूरक रोजगार उपलब्ध कराना था।

सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना 25 सितम्बर, 2001 को आरम्भ हुई। रोजगार आश्वासन योजना और जवाहर ग्राम समृद्धि योजना को मिलाकर सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना शुरू की गई। इसके अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में खाद्य सुरक्षा के साथ साथ दिहाड़ी रोजगार के अवसर बढ़ाने के लिए अस्थायी सामुदायिक परिसंपत्तियों का निर्माण किया जाता है।

स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना 1 अप्रैल 1999 को आरम्भ की गई। इस योजना में ग्रामीण गरीबों को स्वरोजगार के अवसर मुहैया कराने के लिए एक समन्वित कार्यक्रम गरीबी रेखा से उपर जीवनयापन कर रहे लोगों की मद्द कर के सामाजिक एकजुटता, प्रशिक्षण, क्षमता निर्माण और आमदनी देने वाली परिसंपत्तियों की व्यवस्था के जरिए उन्हें स्वयं सहायता समूहों के रूप में संगठित किया जाता है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत अब तक 22.52 लाख स्वयं सहायता समूहों का गठन किया गया है जिसमें 66.97 लाख स्वरोजगारधारी शामिल है। इनमें स्वयं सहायता समूहों के 35.5 लाख सदस्य और 31.43 लाख व्यक्तिगत स्व रोजगारधारी है। इन्हें कुल 14,403.73 करोड़ रूपये की निवेश सहायता प्रदान की गई है। सहायता प्राप्त कुल स्वरोजगारधारियों में 45.54 प्रतिशत अनुसूचित जाति/जनजाति से जुड़े हैं और 47.85 प्रतिशत महिलाएं शामिल है (इंडिया टुडे, पृ0सं0–46–47, 2007)।

ग्रामीण विकास हेतु रोजगार आश्वासन योजना 02 अक्टूबर, 1993 को आरम्भ की गई थी। सूखाग्रस्त, रेगिस्तान बाहुल्य और पर्वतीय इलाकों के चुनिंदा 1,772 पिछड़े ब्लाकों में गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन कर रहे ग्रामीण गरीबों के लिए कम रोजगार की अवधि वाले समय में अतिरिक्त रोजगार का सृजन करना इस योजना का लक्ष्य था। 01 अप्रैल 1999 को इसे एकल मजदूरी रोजगार कार्यक्रम का नया रूप प्रदान किया गया। 1998–99 में इसके अन्तर्गत 41.65 करोड़ मानव दिवस रोजगार का सृजन हुआ। (इंडिया टुडे, पृ0सं0–47, 2007)।

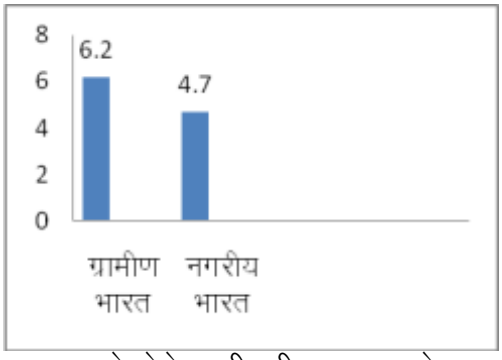

सरकार द्वारा ग्रामीण भारत के बेरोजगारी की समस्या को दूर कर आर्थिक तथा सामाजिक विकास हेतु किए गए प्रयत्नों के फलस्वरूप ग्रामीण भारत में तेजी से परिवर्तन देखा जा सकता है।

ग्रामीण क्षेत्र में आर्थिक विकास

जी0डी0पी0 की प्रतिशत
ग्रामीण बेरोजगारी में गिरावट

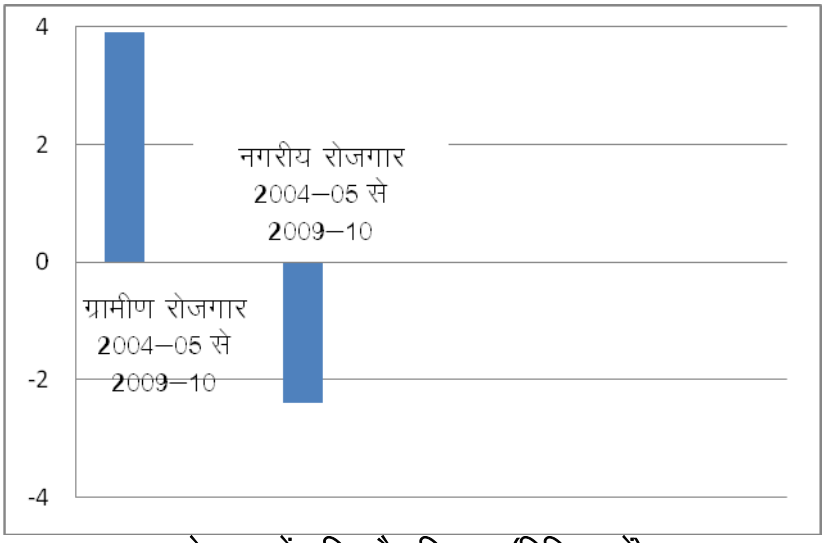

रोजगार में वृद्धि और गिरावट (मिलियन में)
ग्रामीण क्रय शक्ति में वृद्धि

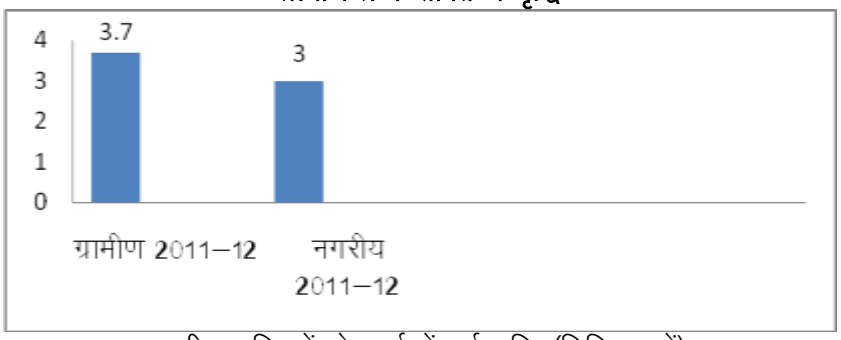

ग्रामीण परिवारों के खर्च में हुई वृद्धि (ट्रिलियन में)

ग्रामीण क्षेत्रों में अच्छी सड़कों का निर्माण और यातायात तथा संचार में सुधार के कारण गांवों में आर्थिक तथा सामाजिक परिवर्तन स्पष्ट रूप में देखे जा सकते हैं। पिछले कुछ वर्षों में नगरीय क्षेत्र की अपेक्षा ग्रामीण क्षेत्र ज्यादा तेजी से बढ़ रहा है। नेशनल सैम्पल सर्वे (एन0एस0एस0) के अनुसार

2004–05 और 2009–10 के बीच ग्रामीण बेरोजगारी में 39 लाख की कमी आई है। गांव के लोगों की आय भी तेजी से बढ़ रही है। 2011 की क्रेडिट सुइस रिपोर्ट के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों का प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद (जी0डी0पी0) नगरीय क्षेत्र की अपेक्षा 1.5 प्रतिशत ज्यादा बढ़ा है। ग्रामीण भारत में जहां यह वृद्धि 6.2 प्रतिशत रही, वहीं नगरीय क्षेत्र में मात्र 4.7 प्रतिशत हुई है। नेशनल सैंपल सर्वे के आंकड़ों के आधार पर तैयार क्रिसिल रिपोर्ट के अनुसार, 2009–10 और 2011–12 के बीच ग्रामीण परिवारेां के खर्चे 3.7 लाख करोड़ (ट्रिलियन) रू0 तक बढ़ा है जबकि इस दौरान नगरीय परिवारों का खर्चा 3 लाख करोड़ रू0 से कम रहा है। इस दौरान ग्रामीण भारत की वृद्धि दर 2 प्रतिशत ज्यादा रही है। वर्तमान में ग्रामीण परिवारों में लोग ज्यादा दो पहिया वाहन तथा टी0वी0 का प्रयोग कर रहे है। जो उनकी बदलती आर्थिक स्थिति का स्पष्ट परिचायक है। इसके साथ ही शिक्षा अर्जित करने के सम्बन्ध में ग्रामीण क्षेत्रों में तेजी से वृद्धि देखी जा सकती है (इंडिया टुडे, पृ0सं0–39, 2012)।

इन अनेक परिवर्तनों के बाद भी भारत के ग्राम में अपेक्षित सामाजिक और आर्थिक विकास नहीं हो पा रहा है। विकास टिकाऊ तब ही रह सकता है जब उत्पादकता में सुधार हो और इस सुधार को टिकाऊ रखने के लिए अर्थव्यवस्था को खोला जाना चाहिए किन्तु ग्रामीण भारत की अर्थव्यवस्था अभी भी आंशिक रूप से खुली हुई अर्थव्यवस्था ही है। कानून, बुनियादी ढांचा, प्रक्रियाएं, व्यवहार और भ्रष्टाचार के कारण ग्रामीण विकास बाधित हो रहा है।

प्रो0 योगेन्द्र सिंह (1973) के अनुसार भारत में आर्थिक विकास में बाधक कारक निम्न हैः–

1. सर्वोत्कृष्टता जिसके अनुसार परम्परागत मूल्यों की वैधता को चुनौती नहीं दी जा सकती है।
2. पूर्णतावाद अथवा समिष्टिवाद; जिसके अनुसार व्यक्ति और समाज या समूह के बीच का सम्बन्ध ऐसा है कि व्यक्ति अधिकार और अपनी आकांक्षाओं को समाज के कल्याण के समाने गौंड़ मानता है जिसका अर्थ यह भी है कि व्यक्ति के उपर सामूहिकता का वर्चस्व होता है।
3. श्रेणीक्रम (जाति, पेशा और सामाजिक स्थिति का वर्गीकरण) और
4. निरन्तरता पुनर्जन्म और कर्म में विश्वास

सरकार द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों की गरीबी और बेरोजगारी को दूर करने हेतु चलाये गये कार्यक्रम ग्रामीण गरीबी और बेरोजगारी की समस्या को हल करने में पूर्णतः सफल नहीं हुए हैं। ग्रामीण जनसंख्या का एक बड़ा भाग आज भी मूल आवश्यकताओं के अभाव में जीवन यापन कर रहा है। ग्रामीण रोजगार योजनाओं के पूर्णतः सफल न होने के कुछ मुख्य कारक निम्न है–

1. नीतियां राजनीतिज्ञों और नौकरशाहों की सुविधा के विचार से दिग्दर्शित हैं बजाय ग्रामीणों की आवश्यकताओं और सतही यथार्थ से। परिणामतः ग्रामीण अर्थतंत्र की दिशाएं उपेक्षित रह जाती है।
2. प्रत्येक कार्यक्रम आगामी चुनाव को ध्यान में रखकर प्रारम्भ किए जाते हैं। अतः कार्यक्रम टुकड़ों में चलता है और कई कार्यक्रम तो कुछ समय बाद समाप्त हो जाते है।
3. कार्यक्रम इस प्रकार बनाए जाते है कि बिना उनके विशिष्ट व्यवसायिक प्रतिरूप और स्थानीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखें वे ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर थोप दिए जाते है। परिणामस्वरूप सृजित सम्पत्ति टिकाऊ नहीं होती है।
4. कार्यक्रम कृषि क्षेत्र पर अधिक केन्द्रित हैं। ग्रामीण औद्योगीकरण पर बांछित ध्यान नहीं दिया जा रहा है। विविध कार्यक्रमों के बीच कोई सामंजस्य नहीं है।
5. इन कार्यक्रमों से सम्बद्ध अधिकारी सरकार द्वारा निर्धारित किए गए लक्ष्यों में अधिक विश्वास नहीं करते दिखते फलस्वरूप वे अपनी भूमिका निर्वाह के प्रति प्रतिबद्ध नहीं है।

सतत विकास उपागम, विकास की ऐसी पद्धति है जो एक तरफ लोगों को बेहतर जीवन अवसर एवं जीवन स्तर उपलब्ध कराती है वही दूसरी ओर विकास प्रक्रिया के नकारात्मक प्रभावों की सम्भावना को कम करती है। यह सामाजिक विकास को एक अंग के रूप में लोगों के मध्य जागरूकता को भी शामिल करता है, जिससे वे पर्यावरण संरक्षण की अनिवार्यता के प्रति संवेदनशील हो सकें, साथ ही यह जीव जगत को संभावित खतरों से बचाने के लिए विकास समस्याओं के सतर्क और सुनिश्चित प्रबन्धन को भी विकास की अवधारणा के अन्तर्गत रखता है। यह शब्द पहली बार 1987 में संयुक्त राष्ट्र की

रिपोर्ट 'Our Common Future' में सामने आया। (शिव बहाल सिंह, पृ0सं0–28)। इस आयोग में सतत विकास को भावी पीढ़ियों का अपनी आवश्यकता को पूरा करने की क्षमता से समझौता किए बगैर वर्तमान की जरूरतों को पूरा करने के रूप में परिभाषित किया। सतत विकास की अवधारणा का लक्ष्य समय के साथ उत्पादक परिसम्पत्तियों (भौतिक, मानवीय तथा पर्यावरणीय) को बनाये रखते हुए आर्थिक गतिविधियों के सकल लाभ में बढ़ोत्तरी करना तथा गरीबी की मूलभूत जरूरतों को पूरा करने के लिए एक सामाजिक सुरक्षा उपलब्ध कराना है। अतः ग्रामीण भारत के सामाजिक आर्थिक विकास हेतु इसे सतत विकास के साथ जोड़ कर ही विकास के वांछित लक्ष्यों तक पहुंचा जा सकता है।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के 65 वर्षों के उपरान्त भी ग्रामीण भारत का अपेक्षित विकास नहीं हो सका। यहां गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा, सामाजिक न्याय, सामाजिक असमानता जैसी अनेक समस्याएं आज भी विद्यमान है। अतः ग्रामीण भारत के समुचित विकास हेतु यह आवश्यक है कि विकास की अवधारणा को सतत विकास से जोड़ा जाए।

संदर्भ :

1. Prasad, N., The Myth of Caste system.
2. मुक्त ज्ञानकोष विकीपीडिया, http;hi.wikipedia.org/s/uj8
3. आहूजा, राम., (2001). भारतीय समाज, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर।
4. सिंह, शिवबहाल., (2010). विकास का समाजशास्त्र, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर।
5. दूबे, श्यामाचरण., (2000). विकास का समाजशास्त्र, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली।
6. इंडिया टुडे, पृ0 सं0–22, 25, 23 जुलाई 2012
7. इंडिया टुडे, पृ0 सं0–46–47, 01 अगस्त 2007
8. इंडिया टुडे, पृ0 सं0–39, 19 सितम्बर 2012
9. Singh, Yogendra., (1973). Modernisation of Indian Tradition, Thomson Press, New Delhi.